अङ्क-२४
जुलाई-दिसम्बर २०१४

वेदविद्या
ISSN-2230-8962

पर्यावरण-सन्तुलन में आप : तत्त्वीय प्रधानत्व

प्रो. रूप किशोर शास्त्री

जिस पृथिवीलोक पर प्राणीजगत् अपना-अपना कार्यव्यापार कर रहा है, वह सभी दिशाओं में विराजमान पृथिवी-वायु-जल-सूर्य-चन्द्रमा-नक्षत्रगण और अन्तरिक्षादि देवतत्त्वों से आवृत्त है । इन समस्त देवतत्त्वों को वेद का ऋषि स्नेहवृष्टिसम्पन्ना अम्ब-माताएँ मानते हुए उनसे समस्त दिशाओं में संरक्षण की याचना करता है।[१] वेद एवं ब्रह्मवेत्ता ऋषिजन भलीभाँति अवगत थे कि ये देवतत्त्व ही प्रकृति के सन्तुलनकर्ता एवं जीवजगत् के संरक्षक हैं । इसी हेतु से मानव इन देवतत्त्वों का स्तवन करने में सदा उद्यत रहा है, इसी श्रद्धाभाव के कारण मनुष्य ने इसको बिना किसी प्रकार की क्षति पहुँचाये जीवन में इनका भरपूर उपयोग किया है; यह थी प्राग्पुरुषों की सजगता एवं विवेकशीलता । इन देवतत्त्वों की दिव्यशक्तियों का सतत सान्निध्य एवं संरक्षण प्राप्त करना उनके जीवन का मुख्य व्यावहारिक दर्शन था । चूँकि ऋषि लोग समझते थे कि ये ही हमारे जीवन तथा पर्यावरण के अधिपति तत्त्व हैं।[२]

अथर्ववेदीय उन्नीसवें काण्ड के नौवें एवं दसवें सूक्त की समस्त ऋचाएँ इन देवों में शान्ति की कामना का गायन इसलिए करती हैं ताकि प्राकृतिक दारुण दुःख एवं दुष्प्रभाव का सर्वथा अभाव रहे, चूँकि इस समस्त प्रकृति तथा प्राणी-जीवन के मुख्य आधारतत्त्व ये ही तो देवतत्त्व हैं, जिसमें पृथिवी, द्यौः, अन्तरिक्ष, जल, वाक्, अष्टवसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, मित्र, वरुण, विष्णु, प्रजापति, इन्द्र, बृहस्पति, धूमकेतु, राहु आदि ग्रह- नक्षत्र इत्यादि देवतत्त्व अथवा प्रतिनिधि हैं । उक्त वैदिक ऋचाओं, सूक्तों आदि में स्पष्ट सङ्केत हैं कि वेदों के ज्ञान से सुतरां परिचित पुराकालिक ऋषिलोग पर्यावरणवेत्ता थे तथा पर्यावरण-संरक्षण में किञ्चित् न्यूनता से भी सावधान रहते थे । अतः वैदिक ऋषियों ने पर्यावरण-संरक्षण एवं सन्तुलन हेतु अनेक तथ्यों पर विचार किया था । उदाहरणस्वरूप पृथिवीसंरक्षण, जलसंरक्षण, अन्तरिक्षसंरक्षण, वनस्पतिसंरक्षण, वायुसंरक्षण तथा प्राणीसंरक्षण इत्यादि । आज भी वे विचार-बिन्दु शाश्वत हैं । मानव उक्त दिव्यशक्तियों के मार के कारण सचेत हुआ वातावरण के संरक्षण एवं सन्तुलन पर अपने को केन्द्रित कर रहा है, यह उसकी आज की मूलभूत आवश्यकता बन गयी है ।

---

[१] प्रागपागुदगधराक्सर्वतस्त्वा दिशऽआधावन्तु ।
अम्ब निष्पर समरीर्विदाम् ॥ यजु० ६/३६

[२] मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम् ।
प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे ॥ अथर्व० ६/१०८/२

उक्त समस्या व आवश्यकता पर संसार के चिन्तक, मनीषी, वैज्ञानिक, पर्यावरणविद् सामान्य पुरुष तथा प्रायः सभी देशों की सरकारें गम्भीरतापूर्वक ध्यान देने लगे हैं । इन सभी पर चिन्तन एवं क्रियान्वयन की नितान्त अपरिहार्यता है । इनके संरक्षण की कार्यविधि के लिये पर्यावरण शब्द का प्रयोग अभीष्ट है । संसार के सभी पदार्थ, जीवजन्तु इन सभी से परि + आवरण अर्थात् चारों ओर से आवृत हैं। जगत् का मानव ही एक ऐसा प्राणी है जो अपनी स्वार्थलिप्सा के फलीभूत इन देवतत्त्वों को विकृत करने के साथ-साथ इनमें असन्तुलन पैदा कर सकता है । अतः इसके इस दुष्कृत्य के कारण अन्य जीवों को भी मानव के साथ प्रकृति का कोपभाजन होना पड़ सकता है । इसलिये मानव का ही उत्तरदायित्व है कि वह इनमें किञ्चिदपि विकृति पैदा न होने दे ।

वेदों में सभी समस्याओं का समाधान होने के साथ-साथ तत्सम्बन्धी अनेकानेक पहलुओं पर सकारात्मक चिन्तन भी मिलता है । जलीय-पर्यावरण के सम्बन्ध में चिन्तन की यहाँ अपेक्षा के साथ यह भी आवश्यक है कि जलसंरक्षण एवं तद्गत विशुद्ध सन्तुलित पर्यावरण विद्यमान रहे । इसकी सम्भवतः पहले इतनी आवश्यकता नहीं थी, जितनी आज है । यह सच है कि जीव एवं वानस्पतिक जगत् के लिये जलीय-पर्यावरण की अहर्निश मूल आवश्यकता बनी रहेगी । इस दृष्टि से वेदों में प्रचुर मात्रा में इसका उल्लेख मिलता है । प्रकृति एवं सृष्टि के प्रधान तत्त्वों में जल प्रमुख है । समस्त प्रकृति एवं जैविक जगत् में शान्तिकर तथा जीवननिर्वाहक तत्त्व यदि किसी को माना गया है, तो वह प्रतिष्ठा मात्र जल को ही प्राप्त है, ऐसा ऋग्वेद का कहना है।[१] वेदों में जल का भैषज्यरूप में माहात्म्य वर्णित है। जल समस्त रोगों, व्याधियों को समूल नष्ट करने वाला **अमीवचातनी** और **आपः सर्वस्य भेषजीः** अर्थात् प्रायः सभी रोगों की परमौषधि बताया गया है ।[२] इस जल की **वारि** सञ्ज्ञा भी इसी कारण से है कि यह समस्त शरीरगत व भौतिक दोषों का निवारण करने वाला है । इस जलचिकित्सा का स्पष्ट उल्लेख वेदों में वर्णित है; जहाँ सोम ने कहा है कि (**अप्सु अन्तः**) उदकों में (**विश्वानि भेषजानि**) समस्त रोगों की औषधियाँ हैं तथा (**आपः विश्वभेषजीः**) जल सब औषधियों से सुसम्पन्न है।[३]

वैदिकवाङ्मय में जल के अनेकार्थवाची एवं पर्यायवाची पदों का प्रचुर वर्णन प्राप्त है। स्वयं महर्षि यास्क ने संसार के प्रथम कोषग्रन्थ **निघण्टु** में उदक को (**शतमुदकनामानि**) कहकर सौ नामों का उल्लेख

---

[१] शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ऋग्० ७.३५.८

[२] आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥ ऋग्० १०.१३७.६, अथर्व० ६.९१.३

[३] अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्निं च विश्वशंभुवमापश्च विश्वभेषजीः ॥ ऋग्० १.२३.२०

किया है, वहीं पर सौ नामों की सूची भी दी है ।[१] जल के ये सौ नाम अपने-अपने गुण-कर्म-स्वभाव के कारण क्षेत्र विशेष के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं । उदाहरणस्वरूप **आपः** यह सामान्य जल कहा गया है, जो सामान्यतः पृथिवी पर प्रस्रवित होने वाला अथवा पृथिवी से खोदकर निकाले जाने वाला तत्त्व है। जो जल रोगों का हन्ता है, वह जल **वाः** कहा गया है । प्रदीप्त रश्मियों द्वारा पार्थिव जल को अन्तरिक्ष में ले जाकर स्थापित किये जाने वाले जल को **उदक** नाम दिया गया है । मनुष्य के जीवन में कभी भी आन्तरिक विकारों, दूषित भावों, दुरितों, द्रोहत्वभाव, अंहसों, मिथ्यावचनों एवं मिथ्याचरणों आदि का प्रकोप अथवा आक्रमण सम्भव है । इन आन्तःकरणिक झञ्झावातों अथवा मानसिक, बौद्धिक पर्यावरण को स्वस्थ तथा सन्तुलित करने की अपार शक्ति इस **आपः** में निहित है; ऐसा ऋग्वेद में वर्णन आया है।[२]

शरीरशास्त्रानुसार प्राणी के आन्तरिक पर्यावरण को संरक्षित एवं सन्तुलित करना यह **आपः** का पिण्डगत मानदण्ड है, क्योंकि सञ्जीवनीय तथा आरोग्यत्व तत्त्वों का अक्षय भण्डार है, जिसमें हमें अहर्निश प्राण, जीवन, बल, ऊर्जस्वत्, आरोग्यत्व, रोगनिवारक तथा रोगनिरोधक शक्ति एवं सुख की प्राप्ति होती है, ऐसा सङ्केत यजुर्वेद ने दिया है।[३] कुछ अन्तर से ऐसा भी उल्लेख ऋग्वेद १.२३.१९ में आया है। पुरुष और पुरीष ये दो पद क्रमशः शरीरगत जीवात्मा और पुरि-शरीर के शं-कल्याणकर उदकतत्त्व के लिये आये हैं। इस दृष्टि से पुरुष तथा पुरीष का घनिष्ठ सम्बन्ध है । वह पुरुष-जीवात्मा ही वास्तविक सुख, शान्ति के भोगने के अधिकारी के साथ-साथ पुरि+इष, पुरीष अर्थात् अन्न, ऊर्जा, शक्ति और उत्तम स्वास्थ्यसम्पन्न शरीर का अधिपति पुरुष-जीवात्मा ही सुख-शान्ति, अभ्युदय एवं निःश्रेयस का भोक्ता सम्भव है। षड्विंशब्राह्मणकार ने इस पुरुष-शरीर, जीवात्मा के लिये **रेतोधा** कहा है, चूँकि वह रेतस्-वीर्यतत्त्व, जो शरीर में प्राणशक्ति व जननशक्ति का प्रतिनिधि तत्त्व उदक है, को धारण करने वाला है। निघण्टु में उदक के नामों में **अहि** और **अक्षर** भी पठित हैं।[४] अतः यह उदकतत्त्व अ-नहीं, हि-त्याज्य है, अर्थात् शरीरगत पिण्ड में तथा वैसे ही संसार में यह आपः तत्त्व अहिसञ्ज्ञक है, इसकी सर्वत्र आवश्यकता है । **अ-क्षर**-अविनाशक अर्थात् शरीर एवं संसार में नष्ट करने अथवा दूषित करने

---

[१] निघ० १.१२

[२] इदमापः प्र वहत यात्किं च दुरितं मयि ।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥ ऋग्० १.२३.२२; १०.९.८

[३] अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः ।
देवीरापो यो वऽऊर्मिः प्रतूर्तिः ककुन्मान् वाजसास्तेनायं वाज ꣳ सेत॥ यजु. ९.६

[४] सोमो हि रेतोधा। षड्० विं० ब्रा० ४.६.२

योग्य नहीं हो । यह सर्वथा संरक्षणीय है, इसकी कथमपि उपेक्षा विनाश के कगार पर ला खड़ा कर सकती है।

उक्त चिन्तन से स्पष्ट हो गया है कि किस तरह यह **आपः** तत्त्व शरीर के लिये उपादेय है । ठीक वैसे ही इस संसार के नियामक तत्त्वों में जल की अत्यन्त उपादेयता है। जैमिनीयोपनिषद्कार **आपो वा इदमग्रे महत्सलिलमासीत्** द्वारा यह सारगर्भित विचार दे रहा है कि इस सृष्टि का अग्रणी तत्त्व यदि कोई था या है; तो वह **आपः** अथवा सलिल ही था । वस्तुतः जलतत्त्व सृष्टि का जीवन है, अतः यह अपनी स्थितियों, परिवर्तनों, विकारों एवं विविध रूपों, विविध स्थानों में विश्व का पालन-पोषण एवं सञ्चालन कर रहा है । ऋग्वेद का कथन है कि जल की गहन एवं गम्भीर कुहक (जलसंयुक्त कोहरा) से सृष्टि-निर्माण की प्रक्रिया का प्रारम्भ होता है ।[१]

सृष्टि-निर्माण मूलतत्त्वों में जल के अपर नामवाची पदों के सलिल, अम्भस् तथा कुहक शब्दों का भी प्रयोग हुआ है । जैसे मातृगर्भस्थ शिशु चारों और कलल रस-रूप जल से आवृत रहता है, उसीसे गर्भस्थ शिशु संरक्षित, संवर्धित, पोषित एवं प्राणित होता है, तद्वत् ही ब्रह्माण्डगत पर्यावरण कुहक-रूप जल से आवृत एवं पोषित होता है।

'आप्लृ व्याप्तौ' धातु से **आपः** और **'षल् गतौ'** धातु से **सलिल** सञ्ज्ञक जल क्रमशः व्यापकता और गतिशीलता का संवाहक तत्त्व है । जल सृष्टि का निरन्तर प्रवाहमान तत्त्व है। निश्चय ही जल वानस्पतिक जगत्, जैविक जगत् एवं वायुमण्डलीय पर्यावरण को संरक्षित, सन्तुलित करने वाला है। यह जहाँ शक्ति एवम् ऊर्जा का संवाहक है, वहीं यह जीव-जन्तु, वृक्ष, फल, पुष्प, पादप, लतादि के जीवनप्रदाता और रससञ्चारी है। ऋग्वेद ने उदकतत्त्व को ऊर्जा का स्रोत माना है, ऐसा एक रोचक एवं गम्भीर प्रसङ्ग प्रस्तुत किया गया है कि अग्नि अर्थात् शक्तितत्त्व के तीन जन्मस्थान हैं- (**समुद्रे एकं**) समुद्र में बड़वानल के रूप में, (**दिवि एकं**) द्युलोक में सूर्य-रूप दूसरी शक्ति है तथा (**अप्सु एकं**) अन्तरिक्षस्थ मेघाशय में विद्युत्रूपी तृतीय उत वा शक्ति है । यह शक्ति ही ऋतुओं की व्यवस्थापिका तथा पार्थिव जगत् के व्यवस्था सञ्ज्ञान के लिये इसीके द्वारा निर्माण-रूप है।[२] उक्त अग्नित्रय अथवा शक्तित्रय के उदकतत्त्व की मुख्यतः अवान्तर-भेद से भूमिका है, इस सम्बन्ध में स्वयमृग्वेद रहस्योद्घाटन करता है कि अग्नि का मेघस्थलों में अन्तर्वास है, वही अग्निर्भूत होकर औषधियों में जाकर अन्दर प्रविष्ट होता है

---

[१] नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥ ऋग्० १०.१२९.३

[२] त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु ।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून्प्रशासद्वि दधावनुष्ठु ॥ ऋग्० १.९५.३

तथा उनके गर्भ में जाकर पुनः उत्पन्न होता है और निवास करता है।[१] ऋग्वेद में प्रसङ्ग आया है कि मनुष्यों एवम् अन्य प्राणियों में जो अग्नितत्त्व प्रविष्ट हैं, उन्हें मूलतः दिव्य **आपः** सञ्ज्ञक माना गया है, वह रक्षा करे।[२] इस सम्बन्ध में मातृभूत **आपः** तत्त्व अग्नि को उत्पन्न करने वाला बताया गया है।[३] इस रहस्य का अथर्ववेद विस्ताररूप देते हुए स्पष्ट करता है कि जलों के अन्दर अग्नियाँ हैं। वे सदा रक्षक होवें, चूँकि मनुष्य उनका उपयोग करता है, समिद्ध होता है।[४] कपिष्ठलसंहिता ६.३ में इसी **अग्निं या गर्भं दधिरे** द्वारा स्पष्ट व्याख्या कर दी है कि **आपः** ही अग्नि को अपने गर्भ में धारण करते हैं । वस्तुतः अग्नितत्त्व के बिना **आपः तत्त्व** के वानस्पतिक तथा जैविक जगत् में प्रवेश एवं निवास असम्भव है। अतः जल ही शक्ति के मूल में माना जाये तो किसी भी प्रकार की विप्रतिपत्ति नहीं होनी चाहिये । यह अग्नि तो माध्यम है जो सब धान्यों, वनस्पतियों एवं प्राणियों में चन्द्ररूप होकर रस भरता है, उन्हें रमणीय बनाता है।[५] वह जलतत्त्व अत्यन्त कल्याणकारी एवम् ऊर्जावान् बन जाता है तथा प्राणीजगत् व वानस्पतिक जगत् का संरक्षक बन जाता है, जिसे सूर्य की किरणों का सान्निध्य प्राप्त है एवं वह जल जो सूर्य के सम्मुख है अथवा जिनके साथ सूर्य है।[६] ऐसा जल तो खुले में ही सम्भव है, जो नदियों, झीलों, झरनों, प्रपातों, कुओं, पुष्करों, तालाबों, बाँधों तथा समुद्रों में विद्यमान रहता है। ऐसे खुले जलों के निकट ही पूर्व मनीषी वैज्ञानिक पुरुषों ने अपने निवास, नगर, शहर, कस्बे, गाँव, प्रासाद, महल, आश्रम, गुरुकुल, कुटियाँ तथा तपस्थली आदि बनाये । क्योंकि सूर्य एवं चन्द्र किरणों से सञ्चरित शक्तिमत्, ऊर्जस्वत् उदक मानव के लिये सतत उपयोगी रहा है । **आपः** प्राणी को असाध्य व्याधियों, कष्टों से बचाकर उसका भद्र करता है । चूँकि यह **आपः** आध्यात्मिक दृष्टि से भी दिव्य प्रेरणाओं व आभाओं से परिपूरित रहा है ।

---

[१] अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे ।
गर्भे सञ्जायसे पुनः ॥ ऋग्० ८.४३.९

[२] यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति ।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ ऋग्० ७.४९.४

[३] तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।
तमित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥ ऋग्० १०.९१.६

[४] रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्व१न्तारक्षतु त्वा मनुष्या३ यमिन्धते ।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्र धाग् विद्युता सह ॥ अथर्व० ८.१.११

[५] उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥ ऋग्० ८.४३.११

[६] अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह। ता नो हिन्तन्त्वध्वरम्।
अप्स्वान्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये। देवा भवत वाजिनः॥ ऋग्० १.२३.१७-१८

उक्त रहस्यों से परिचित मानव ने ऐसे खुले जल को कदापि दूषित, प्रदूषित, अशुद्ध, अपेय और असेव्य नहीं होने दिया और उसका भरपूर उपयोग व उपभोग करता रहा है। परन्तु खेद है कि आज का बुद्धिजीवी होने वाले मिथ्यादम्भी मनुष्य ने पूर्वपुरुषों के विचारों, कर्त्तव्यों के सर्वथा विपरीत चलकर मात्र भोगवादी अपसंस्कृति का ध्वजावाही होना स्वीकार कर लिया है । फलतः उसने सूर्यरश्मिशोधित खुले जल को या तो गन्दे नाले में परिवर्तित कर दिया है अथवा उसका स्वरूप ही विकृत करके या मिटाके रख दिया है । आज आवश्यकता है फिर से उसे दसवें मण्डल के नौवें सूक्त की -

१. **शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ॥**[१]

२. **आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥**[२]

३. **यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥**[३]

४. **तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥**[४]

इन ऋचाओं का महत्त्व समझने की, तभी कहीं जाकर जलप्रदूषण एवं जल असन्तुलन की सङ्ज्ञा से मुक्ति मिल सकेगी ।

प्रो. रूप किशोर शास्त्री

सचिव,

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान,

(मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, भारत सरकार)

उज्जैन (म.प्र.)

[१] ऋग्० १०.९.४

[२] ऋग्० १०.९.१

[३] ऋग्० १०.९.२

[४] ऋग्० १०.९.३